खण्ड-13, अंक-1, वर्ष-2025, मु0प्र0 1-6
D.O.I.: https://doi.org/10.22445/avspv13i1.1
SJIF (2025) : 8.749

शोध पत्र

Folk-Geography and related terminology: with special reference to Rajasthan

Satish Kumar Sharma
Rajasthan Forest Service (Retd.)
14-15, Chakriya Amba, Rampura Circle, Jhadol Road
Post- Nai, Udaipur -313 031, Rajasthan, India
sksharma56@gmail.com

Received: 30-09-2025, Accepted: 10-10-2025

Abstract- Folk-geographical knowledge of tribals, forest dwellers and rurals of Rajasthan is very rich. Various aspects of Folk-geography of the state have been described and discussed in the present paper. The rich terminology of Folk-geography of Rajasthan related to rains, water flow and storage system, mountain chain and rocks, forest and vegetation and wells and other man-made water storing structures is collected and presented in this paper.

Key words- Folk-geography, terminology, Rajasthan

लोक-भूगोल एवं संबंधित शब्दावली : राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में

सतीश कुमार शर्मा
राजस्थान वन सेवा (सेवा निवृत्त)
14–15, चकरिया आम्बा, रामपुरा चौराहा, झाडोल रोड
पोस्ट–नाई, उदयपुर– 313031, राजस्थान, भारत
sksharma56@gmail.com

सार– राजस्थान आदिवासियों, वनवासियों एवं ग्रमीणों की लोक–भूगोल संबंधी ज्ञान में बहुत धनी है। प्रस्तुत पत्र में राज्य के लोक–भूगोल संबंधी विभिन्न पक्षों का वर्णन एवं व्याख्या प्रस्तुत की गई है। वर्षा, जल प्रवाह एवं भराव तंत्र, पर्वत एवं चट्टानें, वन एवं वनस्पतियाँ तथा कुआँ एवं अन्य मानव निर्मित जल स्रोतों की उन्नत लोक – भूगोल शब्दावली का प्रस्तुतीकरण किया गया है।

बीज शब्द– लोक–भूगोल, शब्दावली, राजस्थान

1. **परिचय–** विज्ञान की किसी शाखा का जब स्थानीय समुदायों खासकर आदिवासियों के संबंध के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है तो उसे विज्ञान की एक अलग शाखा के रूप में पहचाना जाता है जैसे वनस्पतियों का जब आदिवासियों से संबंध प्रदर्शित करने हेतु अध्ययन किया जाता है तो वह नृवनस्पति विज्ञान (Ethnobotany) कहलाता है। ''एथनोबोटनी'' शब्द का पहली बार उपयोग 1895 में हार्शबर्गर द्वारा किया गया था। वन अधिकारी दीप नारायण पाण्डे ने वन विज्ञान का आदिवासी समुदाय के साथ संबंध को ''एथनोफॉरेस्ट्री'' के रूप में 1998 में परिचित कराया।[7] यदि आदिवासियों, वनवासियों, एवं अन्य ग्राम समुदायों का किसी विज्ञान की शाखा से संबंध जोड़ना हो तो ''लोक'' शब्द का उपसर्ग की तरह उपयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार 1998 में राजस्थान में प्राणि .विज्ञान का स्थानीय समुदायों वि ोशकर आदिवासियों के संबंध के अध्ययन को ''लोक प्राणि–विज्ञान'' नाम दिया गया।[2] इसी तरह भूगोल का अध्ययन स्थानीय समुदाय के संदर्भ में किया जाये तो लोगों के परम्परागत ज्ञान के इस विज्ञान को ''लोक–भूगोल'' कहा जा सकता है।

2. **अध्ययन का उद्देश्य–** भूगोल मुख्य रूप से पृथ्वी की सतह का विज्ञान है। इस विज्ञान की स्थानीय समुदायों की, स्थानीय परिवेश में ज्ञान व समझ हमें एक अलग ही आयाम के दर्शन कराती है। राजस्थान के आदिवासी, वनवासी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के समुदायों के परंपरागत भूगोल के ज्ञान को जानना न केवल एक रूचिकर कार्य है अपितु इस ज्ञान का लोक जीवन में अपना अलग ही महत्व है। लोक–भूगोल के स्थानीय पहलुओं की जानकारी होने पर वन विभाग, भूसंरक्षण विभाग, जलदाय विभाग एवं अन्य राजकीय विभाग क्षेत्र में कार्य करने के समय इस लोक ज्ञान का न केवल उपयोग कर सकते हैं बल्कि स्थानीय शब्दावली के अर्थ को अच्छी तरह समझकर लोगों की राय व भावना को भी जान सकते हैं। इससे विकास कार्य में अधिक सफलता मिलती है साथ ही हमारे लोक ज्ञान के संरक्षण व उपयोग का मार्ग भी प्रशस्त होता है।

3. **प्रयोगात्मक अध्ययन विधि–** अध्ययनकर्ता ने वन विभाग में राजकीय सेवा अवधि 1980 से 2016 तक राजस्थान के अलवर, भरतपुर, जयपुर, उदयपुर आदि जिलों में कार्य किया एवं सम्पूर्ण राज्य में भ्रमण किया। दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी बहुल अंचल में भील, भील मीणा, गरासिया, डामोर एवं कथौडी निवास करते हैं।[1] इस अंचल के लोकज्ञान को बहुत गहनता से समझा गया। यहाँ के खेतों, कुओं,

खदानों, चारागाहों, जलाशयों आदि को स्थानीय गुणीजनों के साथ हर दृष्टि से देखा गया। राजस्थान के ग्रामीण अंचल के लोगों से संपर्क किया गया तथा उनके साथ वनों, चारागाहों, ओरणों, नदियों, पहाडों, बाधों आदि विविध क्षेत्रों का लोक–भूगोल जानने हेतु अध्ययन व भ्रमण किया गया।

4. **प्रेक्षण**– अध्ययन की अवधि में लोक–भूगोल के अनेक महत्वपूर्ण पहलू एवं शब्दावली से परिचय हुआ। उस विशेष शब्दावली का किस रचना, क्षेत्र, घटना या परिघटना (Phenomenon) से संबंध हैं, यह जाना गया। प्रमाण स्वरूप फोटोग्राफ भी लिये गये। अनेक विषयों से संबंधित शब्दावली संग्रह की गई लेकिन उनमें से वर्षा, वन एवं वनस्पति, पर्वत एवं चट्टान, जल प्रवाह एवं जल भराव तथा कुओं एवं अन्य मानव निर्मित जलस्रोतों से संबंधित शब्दावली जो लोगों के जीवन में कहीं अधिक महत्व रखती है, उस पर विशेष ध्यान दिया गया। संग्रहीत शब्दावली नीचे **सारिणी–1** में प्रस्तुत हैः–

सारिणी–1: लोक–भूगोल से संबंधित राजस्थान में प्रचलित लोक शब्दावली

क्र.सं.	ज्ञान का क्षेत्र या मुख्य विषय	महत्वपूर्ण शब्दावली
1	वर्षा	दौगडा (देंगड़ा), भुरभुरिया, भजाट या सौंटा या सूँटा या सराड़ा, छाटा – छिड़का, झड़, बूँदा– बाँदी, खण्ड वर्षा, आल–में–आल
2	जल प्रवाह एवं जल भराव	खादरा या दरा या धरा (river bed pool), वाला, नाला, नदी, झर, जेर, झरना, भडक,पेटा, डोक, हैं जुआं, पड़वाफूटना, ढिया
3	पर्वत व चट्टानें	चाट, पूँछडी, कराई या कराड, ऊपरमाल, टेकरी, मथारा, थाग, बरखण्डी, टूस, टोडा, काकेडिया, भाकर, मगरा, मगरी, तोरणा , घाटी, कुण्ड, कदम कुण्ड, कुण्डी, खरड़, हाल, नाल, खाल, खोह, खोला, कातली
4	वन एवं वनस्पतियाँ	रूँध (बाल बणी), काँकड़ बणी, रखत बणी, देव बणी या ओरण /ओरण (ओण), छींड, उछींड, अंधेरी, रोई
5	कुएँ एवं अन्य मानव निर्मित जल स्त्रोत	ढीमड़ी, ढीमड़ा, भगड़, बावड़ी, केवड़ी, खड़ीन, जोहड, नाड़ी, कदमा तालाब, चव्वा

5. **विश्लेषण**

5.1 **वर्षा**– वर्षा एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक कारक है जो खेती, पशुपालन, सिंचाई, पेयजल, वानिकी, उद्योग विकास आदि में अति आवश्यक है। वर्षा के कई रूप हैं तथा हर प्रकार की वर्षा हेतु एक अलग लोक शब्द है। यदि बहुत बारीक फुँवारें बरसती हैं तो उस वर्षा को ''भुरभुरिया'' कहा जाता है। यदि सामान्य आकार की बूँदे अल्प समय गिरती हैं तो उस वर्षा को ''बूँदा–बाँदी'' कहा जाता है। मोटी बूंदों की बूँदा–बाँदी जो अपेक्षकृत कुछ अधिक देर हो जाये लेकिन जरूरत से कम ही बरस कर रूक जावे तो उसे छाटा–छिड़का कहा जाता हैं। अप्रैल– मई में गर्मी के समय अचानक अल्पकालिक हुई वर्षा ''दौंगड़ा या देंगड़ा'' कहलाती है। तेज हवा या आँधी के साथ वर्षा कुछ देर तक हो कर रूक जावे तो इसे भजाट या सूँटा या सौंटा या सराडा कहा जाता है। यदि कई दिन निरंतर वर्षा होती रहे एवं सूर्य के दर्शन नहीं हों तो ऐसी वर्षा को ''झड़'' कहा जाता है। झड़ लगने पर बाढ़ की स्थिति बनती है तथा नदियाँ उफान पर आ जाती हैं। पूरे संभाग में कहीं – कहीं वर्षा हो जाये, लेकिन हर जगह वर्षा न हो तो इसे खण्ड वर्षा कहा जाता है। भूमि में नमी को ''आल'' कहा जाता है। वर्षा होने पर भूमि की ऊपरी सूखी पर्तो में गीलापन बढ़ता हुआ नीचे की पर्तों के गीले क्षेत्र के छू जाने पर ''आल–में–आल'' होना बताया जाता है। मानसून आगमन पर यदि पहली एक–दो वर्षा से ''आल–में–आल'' मिलने की स्थिति बन जाती है तो कृषक बीज बुवाई प्रारंभ कर देते हैं। इस स्थिति में वृक्षारोपण क्षेत्रों में पौध लगाने का कार्य भी प्रारंभ हो जाता है।

5.2 **जल प्रवाह एवं जल भराव**– राजस्थान के ग्रामीण परिवेश में ढालू क्षेत्र में द्वितीय चरण की धाराएँ (Second order streams) ''वाला'', तृतीय चरण की ''नाला'' एवं चतुर्थ चरण की ''नदी'' कहलाती हैं। नदी के मिट्टी तट (soft bank) ''ढीया'' कहलाते हैं। नदी व बाँध का पैंदा ''पेटा'' कहलाता हैं। पेटा शब्द पेट से आया है। जिस तरह हमारे पेट में खाना व पानी भरता है उसी तरह बाँधों, तालाबों व नदियों के पेटे में पानी भरता/बहता है। पानी सूखने पर पेटा क्षेत्र में की जाने वाली खेती को ''पेटा काश्त'' कहा जाता है।

अलवर जिले में पहाड़ों से उतर कर दूर समतल क्षेत्र में नदी के पेटे में पाये जाने वाले पानी भरे गड्ढे ''डोक'' कहलाते हैं। दक्षिणी राजस्थान में नदी के पहाड़ी मार्ग एवं पहाड़ से आगे के मार्ग में पानी भरे बड़े गड्ढे ''दरा या धरा या खादरा'' कहे जाते हैं। उदयपुर जिले में फुलवारी अभयारण्य में वाकल नदी बीरोठी गाँव के पास वन क्षेत्र में प्रवेश करती है तथा गऊपीपला–पाथरपाड़ी क्षेत्र में अभयारण्य से बाहर निकल

जाती हैं। यह नदी कोटड़ा गाँव के पास साबरमती नदी में मिल जाती है। अभयारण्य क्षेत्र में गर्मी के मौसम में भी वाकल नदी में पानी भरे 36 खादरे गिने जा सकते हैं जिनके सभी के स्थानीय नाम अलग–अलग हैं।[3]

पहाड़ों में ऊँचाई से गिरते पानी के झरने स्थानीय बोल–चाल में झर या जेर या भड़क या धोरोड़ा कहलाते हैं जैसे ''कटावली जेर'' जो फुलवारी अभयारण्य में एक महत्वपूर्ण झरना हैं। प्रतापगढ़ जिलें में पीपलखूँट तहसील के खेमपुरीया गाँव में भुखी भड़क नामक झरना प्रसिद्ध है। विंध्याचल पर्वतमाला क्षेत्र की खोहों (gorges) में झरनों की प्रचुरता है। झरनों की शब्दावली भी बहुत विशद है। गिरते पानी की धारा को ''भड़क'' तथा उसके नीचे पानी संग्राहक गढ्ढे को ''कुण्डी'' कहा जाता है। खोह के भडक क्षेत्र के आस–पास के भाग को ''हाल'' तथा बाद के क्षेत्र को ''नाल'' तथा नाल में बहते पानी की धारा को ''खाल कहते हैं(**चित्र–1**)। प्रायः ''हाल'' क्षेत्र मे चट्टानो पर भमर नामक मधुमक्खी (rock bee, *Apis dorsata*) के छत्ते देखने को मिलते हैं। फुलवारी अभयारण्य में ''कानी हाल'' क्षेत्र मधुमक्खियों के लिए प्रसिद्व है।

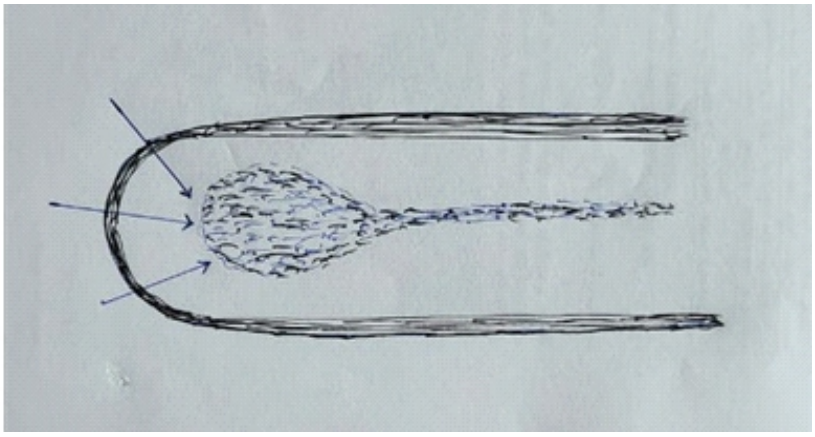

चित्र–1: खोह के विभिन्न भाग (1= भड़क, 2=कुण्डी, 3= हाल, 4=नाल, 5= खाल, 6= कराई)

ऊँचाई से गिरते पानी के विपरीत सामान्य भूमि से भी कई जगह पानी उगलता मिलता है। जमीन से निरंतर उगलते पानी को ''हैंजूआ'' कहते हैं जबकि अधिक बरसात के दिनों में सीमित अवधि के लिए भूमि से पानी उगलने लगे तो उसे ''पड़वा फूटना'' कहते हैं। वर्षा समाप्ति पर पड़वे बन्द हो जाते हैं जबकि हैंजूआ पानी उगलते रहते हैं। सज्जनगढ़ वन्यजीव अभयारण्य के उत्तरी छोर पर एक विशाल रायण वृक्ष के पास 24 घण्टे बहने वाला एक सुन्दर हैंजूआ विद्यमान था जो गत दशक में अज्ञात कारणों से समाप्त हो गया।

5.3 **पर्वत व चट्टानें**– किसी पहाड़ की ऊँची चोटी जिसमे कुछ पैनापन सा प्रतीत हो, उसे मेवाड क्षेत्र में ''मथारा'' या ''दूस'' कहा जाता है। यदि मथारा कुछ नुकीला सा न होकर चपटा पठारी हो तो उसे ''थाग'' कहा जाता है। मथारा शब्द माथा यानी सिर के समकक्ष भाव प्रकट करता है। अलवर जिले में पहाड़ी की चोटी को ''टोडा'' कहा जाता है। कोई पहाड़ यदि अपनी ऊँचाई कम करता हुआ धीरे–धीरे समाप्त हो जाता है तब उसके इस अन्तिम छोर को उत्तर–पूर्वी राजस्थान में ''पूँछड़ी'' कहा जाता है जैसे रेणागिरि पहाड की पूँछडी, गोर्वधन पर्वत की पूँछड़ी आदि। यदि पहाड़ों में ऊँचाई पर पठार स्थित हो तो उसे ''माल या माला या ऊपरमाल'' कहा जाता है। भीलवाड़ा जिले में बिजोलिया कस्बे के पास का ऊपरमाल क्षेत्र खनन के लिए राजस्थान ही नही देश भर में प्रसिद्व है।

पश्चिमी राजस्थान व शेखावटी क्षेत्र में बड़े पर्वत ''भाकर'' तो दक्षिणी राजस्थान में ''मगरा'' कहलाते हैं। छोटे पहाड़ ''मगरी'' शब्द से जाने जाते हैं। जैसे उदयपुर शहर में हरिदास जी की मगरी, हिरण मगरी, तीरा मगरी, मोती मगरी आदि छोटे व कम ऊँचाई के होते हुऐ भी बहुत प्रसिद्व हैं। बडे पहाड़ों के उस पार जाने वाले चढ़ाईदार रास्ते को ''घाटा'' तथा छोटे पहाड़ों के चढाई वाले रास्तों को ''घाटी'' कहा जाता है जैसे चीरवा घाटा (उदयपुर के पास), जिन्दोली घाटी (अलवर जिले में जिन्दोली गाँव के पास), कोलान घाटी (अलवर जिले मे ततारपुर गाँव के पास) आदि। वस्तुतः पहाड़ी भागों में ऊँचाई एवं चढ़ाई के मार्गों को आकार अनुसार घाटा या घाटी के नाम से जाना जाता है। जिन पहाड़ी स्थलों में पूर्व में घाट मार्ग थे। वहाँ अब पहाड़ों में सुरंगें बनाने का कार्य प्रारंभ हो गया है। वे ऊँचे पहाड़ जिन पर वर्षा ऋतु में घुमड़ते बादल टकराते हैं तथा पहाडों के ऊपरी भाग बादलों से ढक जाने से नजर नही आते, उन पहाड़ों को शेखावाटी क्षेत्र (झुनझुनू, सीकर एवं चूरू जिला) में ''बरखण्डी'' कहा जाता हैं जैसे लोहार्गल बरखण्डी।[5] भरतपुर जिले में पहाड़ों व वनों से दूर यदि कोई छोटा सा वृक्षों–झाड़ियों से हरा–भरा क्षेत्र विद्यमान हो तो उसे बरखण्ड कहा जाता है। जो ''वन का एक खण्ड'' होने का अर्थ प्रकट करता है। यदि किसी बरखण्ड में कोई मन्दिर स्थित हो तो उसे बरखण्डी मन्दिर कहा जाता है। वस्तुतः बरखण्ड एक तरह की देवबणी (sacred grove) का ही स्वरूप है।

अरावली पर्वतमाला के पहाड़ आधार पर चौड़े तथा शीर्ष की तरफ संकरे होते हैं। कई जगह पर्वतों के उपरी भागो में आर–पार प्राकृतिक रूप से बने छिद्र पाये जाते हैं जिन्हें दक्षिणी राजस्थान में ''तोरणा'' कहा जाता है जो तोरणद्वार शब्द से उत्पन्न हुआ शब्द है। यानि तोरणा पहाड़ों में बने प्राकृतिक तोरणद्वार हैं जैसे उदयपुर जिले की ओगणा रेंज में एक आरक्षित वन खण्ड का नाम ही राजकीय दस्तावेजों में तोरणा वन खण्ड है। इस वन खण्ड में एक पहाड़ी के शीर्ष पर सदियों पुराना एक छिद्र है जो लोगों के आकर्षण का केन्द्र बना रहता है। उदयपुर जिले के मगवास गाँव के पास भी पहाड़ में एक तोरणा विद्यमान है। फुलवारी अभयारण्य में आड़ा हल्दू वन खण्ड में सुरा गाँव के पास एक तोरणा है तथा डैया वन खण्ड में डैया गाँव के पास ''कानापारा'' नामक तोरणा भी प्रसिद्व है। तोरणा के समकक्ष अलवर जिले में ''पोल'' शब्द का चलन है जो पोला या खोखला शब्द से बना है। बाघ परियोजना सरिस्का में पांण्डूपोल नामक स्थान पर पहाड़ में एक द्वारनुमा बडा छिद्र विद्यमान है। कहते हैं यह छिद्र पाण्डुओं ने अपने वनवास के दौरान बनाया था इसीलिए इसका नाम पाण्डुपोल पडा। ''तोरणा व पोल'' परिस्थतिकी पर्यटन को बढावा देने में उपयोगी हो सकते हैं।

स्थानीय लोगों का लोक भूगर्भ विज्ञान का ज्ञान भी बहुत अच्छा होता है। राज्य के प्रतापगढ जिले एवं आस–पास के क्षेत्र में बैसाल्ट चट्टानें पाई जाती हैं। ये काले रंग की होकर काफी कठोर व भारी होती हैं। इन चट्टानों को प्रतापगढ जिले में ''चाट'' नाम से जाना जाता है। ये चट्टानें जगह–जगह चपटी अवस्था में क्षैतिज फैलाव लिए मिलती हैं। संभवतः चपटेपन के कारण इन्हें चाट नाम मिला है। पहाडों में दूर से देखने पर यदि कोई चट्टान भिन्न रंग की नजर आती है तो उसे भी ''चाट'' नाम से जाना जाता है। पहाडों में कम मोटाई के चपटे पत्थरों को ''कातली'' कहा जाता है। चिनाई के दौरान बडे पत्थरों के बीच छोटे स्थान की भराई हेतु कातली बहुत उपयोगी मानी जाती हैं। सफेद पत्थर यानी क्वार्ट्ज को ''चकमक का पत्थर'' कहा जाता है। इस पत्थर पर सेमल (*Bombax ceiba*) वृक्ष के सूखे फल की रूई को रखकर दो चकमक पत्थरों को रगड़कर कथौड़ी आदिवासी आग पैदा कर देते हैं। नदी प्रवाहों मे लुढ़ककर गोल हुऐ पत्थर को ''लोढ़ी'' कहा जाता है जो घरों में चटनी पीसने हेतु लोगों द्वारा उपयोग लिए जाते हैं।

अरावली पर्वतमाला पर ढालों पर लम्बवत चट्टानों के टुकडों का एक रेखीय प्रवाह देखने को मिलता है जिसे लोक शब्दावली में ''खरड़'' कहा जाता है (**चित्र–2**)। भूविज्ञान में खरड़ हेतु टालस क्रीप शब्द उपयोग होता है। पहाड़ों में पाए जाने वाले खरड़ प्राकृतिक अग्नि पट्टी (fire lines) की भूमिका निभाते हैं तथा दावानल को रोककर पहाड़ी वनों को सुरक्षा प्रदान करते हैं।[6]

चित्र–2: पहाड़ी ढाल पर स्पष्ट नजर आते हुए 4 खरड़

अरावली पर्वतमाला मे दो समानान्तर पहाडियों के बीच की अपेक्षाकृत लम्बी व संकरी घाटी को ''नाल'' कहा जाता है। संभवतः यह शब्द नली से बना होगा। अरावली की अधिकतर नाल प्रायः ''V'' आकार की होती हैं। नाल में कोई न कोई नदी–नाला अवश्य रहता है। राजस्थान में अनेक नाल बहुत प्रसिद्व हैं जैसे केवड़ा की नाल, फुलवारी की नाल, भीलड़ी माता की नाल, जामुनिया की नाल, खोखरिया की नाल आदि। यदि किसी पर्वत के ढाल में छोटी नाल नुमा कोई खाँच हो या कोई नाल बहुत छोटी हो तो उसे ''खोला'' कहा जाता है। विंध्याचल पर्वत में नाल जैसी ही रचनाऐं होती हैं लेकिन प्रायः ये ''U'' आकार के खड़े तटो युक्त होती हैं जिन्हें खोह (gorge) कहते हैं। खड़े तट टूट–टूट कर कालांतर में ढालू हो जाते हैं एवं तब खोह ''V'' आकार या U व V आकार का मिश्रित रूप नजर आती हैं। खोहों के खडे पथरीले तटों को ''कराई'' या ''कराड़'' कहते हैं।

पहाड़ों में जगह–जगह खोखले गड्ढेनुमा या गुफानुमा स्थान मिलते हैं जिन्हें ''कुण्ड'' कहा जाता है। कुण्डों में वर्ष पर्यन्त या वर्षा एवं सर्दी में पानी पाया जाता है। अजमेर जिले में पुष्कर में पास पंचकुण्ड, अलवर जिले में रेणागिरि गाँव के पास परशुराम कुण्ड, बड़ा बेरा कुण्ड, हनुमान कुण्ड; झुंझुनू जिले में लोहार्गल कुण्ड, चिराणा गाँव के ''ताताकुण्ड'' व ''ठण्डाकुण्ड'' आदि प्रसिद्व हैं। यदि किसी कुण्ड के पास कदम (*Mitragyna parvifolia*) का वृक्ष उगा हो तो उसे कदम कुण्ड कहा जाता है। सीकर जिले में नीम का थाना कस्बे के पास छापोली गाँव में एक कदम कुण्ड बहुत प्रसिद्व है। स्थानीय जनों द्वारा सामान्य कुण्डों की तुलना में कदम कुण्ड में धार्मिक अनुष्ठान करने को प्राथमिकता दी जाती है।[4]

5.4 **वन एवं वनस्पति**– प्राचीन काल में वनों के कई विभेद लोगों को ज्ञात थे। तत्कालीन शासकों द्वारा संरक्षित वनों को ''रूँध'' कहा जाता था जैसे बर्ड़ोद की रूँध, ईंटाराणा की रूँध, सीरावास की रूँध आदि। घने जंगल हेतु ''छींड'' शब्द का उपयोग होता था जैसे रामपुर की छींड जो बाघ परियोजना सरिस्का का एक भाग है। छींडों में बाघ व तेंदुए मिलना आम बात है। छींड का विपरीत ''उछींड'' क्षेत्र होता है। मानवीय दखल से वृक्ष सघनता कम होने से उछींड पनपने लगते हैं। यदि जंगल अत्यंत गहरा हो जावे तो वनतल पर लगातार छाया या अंधेरा सा रहता है, उस जंगल को ''अंधेरी'' या ''अंधेरी जंगल'' कहा जाता है। अलवर शहर से सटे जंगल में जब बाला किला की तरफ जाते हैं तो वहाँ के आस–पास के जंगल को अंधेरी जंगल कहा जाता है। छींड़, उछींड़ एवं अंधेरी शब्दों का उपयोग अलवर जिले में आमतौर पर सुनने को मिल जाता है।

राजस्थान में जंगल के छोटे–बडे टुकड़ों को ''बणी या रूँध'' कहा जाता है। राजस्थान में चार तरह की बणीया प्रसिद्व हैं। दो या अधिक गाँव की जहाँ सीमाएँ मिलती है उस जगह को ''सीम संधा'' या ''काँकड कहा जाता है। काँकड पर स्थित बणी को ''काँकड बणी'' कहा जाता है। काँकड पर जितने गाँवों की सीमा का मिलन होता है वे सभी गाँव काँकड बणी में उपयोग का हक रखते हैं। यदि किसी बणी का संपूर्ण क्षेत्र एक ही गाँव की सीमा में समाहित होता हैं तो उसे ''रखत बणी'' कहा जाता है। रखत बणी में केवल एक ही गाँव के हक–हकूक होते हैं। रखत बणी एक तरह का ग्राम्य रक्षित वन होते हैं। कुछ बणियाँ किसी देवस्थान के चारों तरफ या सटकर होती हैं जिन्हें ''देवबणी'' या ''ओरण'' कहा जाता हैं। इन बणियों का उपयोग धार्मिक कार्यो एवं सीमित व्यक्तिगत उपयोग तक स्वीकृत होता है। ओरण में हरे वृक्षों को काटना मना होता है। ओरण शब्द का प्रचलन पश्चिमी राजस्थान में अधिक होता है। इस क्षैत्र में देगराय ओरण, डुगरपीर ओरण, अभाये फकीर की ओरण, करणीमाता ओरण, सतीमाता ओरण, पाबुजी की ओरण, टेमडाराय ओरण, हिमाक की ओरण, तनोटराय ओरण, हड़बू की ओरण, पनोधरराय ओरण, आईमाता ओरण, ओलाजी ओरण, पनाराय जी की ओरण आदि प्रसिद्व हैं। ओरणों ने सूखाग्रस्त पश्चिमी राजस्थान को जीवनयापन में बहुत योगदान दिया है। ओरण की तरह ही राजस्थान के रेगिस्तानी थार संभाग में गाँवों के आस–पास वृक्ष बाहुल्य सामान्य क्षेत्र भी पाये जाते थे जिन्हें ''रोई'' कहा जाता था। कई जगह ओरण को भी रोई नाम दिया जाता है। प्राचीन भारत में सिंध से लेकर राजस्थान तक गाँव–गाँव में रोई पाई जाती थी।

रूँध या बाल बणी प्राचीन काल में स्थानीय राजा–महाराजाओं व जमीदारों के निजी शिकारगाहों के रूप में संरक्षित एवं प्रबंधित होते थे। इनका आकार अपेक्षाकृत बहुत बडा होता था एवं लोकजन को इनमें उपयोग के सीमित अधिकार मिलते थे। नदी के पाट में यदि कोई चट्टान उभरी हुई नजर आती है तो उनको कई क्षेत्रो में ''काकड़िया'' नाम से जाना जाता है। नदी में जल प्रवाह होने पर काकड़िया चट्टानी द्वीप से नजर आते हैं। फुलवारी अभयारण्य में खाँचन क्षेत्र में वाकल नदी के बहाव क्षेत्र के बीच में लंगोटिया भाटा नामक काकड़िया बहुत प्रसिद्व है। नदी की चौड़ाई जिसमें पानी बहता है उसे पेटा या पाट कहते हैं। यदि नदी अपना नया रास्ता बना लेती है तो पुराना रास्ता भी सावधानी से निरिक्षण करने पर पहचाना जा सकता है। नदी के पुराने रास्ते को ''पुराना पाट'' या ''छोड़ा पाट'' कहा जाता है। उदयपुर की खैरवाड़ा तहसील में खेडा घाटी गाँव में सेवा मंदिर संस्था के एक प्लान्टेशन से सट कर बहने वाली एक जलधारा का पुराना पाट दर्शनीय है। यह एक कटा हुआ पुराना नदी घुमाव (meander) है।

5.5 **मानव निर्मित जल स्रोत**– मानव निर्मित जल स्रोतों का भूगोल एवं उनको समझने के लिए लोक तकनीकी शब्दों को समझना भी एक रूचिकर कार्य है। राजस्थान के कई भागों में छोटे कुए को ढीमड़ी का कुई कहा जाता है लेकिन आकार में बड़े कुऐ को ढीमड़ा कहा जाता है। यदि कुआँ कच्चा है तो उसे ''झेरा'' कहा जाता है। कुएं की आन्तरिक दीवार में क्षैतिज दिशा में कोई गुहा हो तो उसे ''भगड़'' कहते हैं। बिना मुण्डेर के कुओं में यदि दुर्घटनावश वन्यप्राणी गिर जाते हैं तो कई बार वे छुपे हुये भगड़ में घुसे मिलते हैं। कुऐ की खुदाई करते समय जिस गहराई पर पानी निकलना प्रारंभ होता है उसे ''चव्वे की गहराई'' कहा जाता है। कुओं से काफी बड़ी व गहरी, प्रायः वर्गाकार गहराई को ''चव्वे की गहराई'' कहते हैं। भूमि तल से नीचे वर्गाकार या आयताकार, खुदाई कर बनाई गई रचनाऐं बावड़ी कहलाती हैं। पूरे राजस्थान में बावडियाँ मिल जाती हैं। उदयपुर, बूँदी, दौसा, जैसलमेर, कोटा आदि जिलों की बावड़ियाँ प्रसिद्व हैं। बावड़ियों की चारों दीवारें पक्की होती हैं तथा प्रायः एक से तीन तरफ या कभी–कभी चारों तरफ पानी तक पहुँचने हेतु सीढ़ियाँ होती हैं। दौसा जिले की चाँद बावडी में चारों तरफ सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। बावड़ियाँ एक मंजिल से लेकर कई मंजिल गहरी भी हो सकती हैं।

एक विशेष रचना ''केवड़ी'' के बारे में भी जानना रूचिकर रहेगा। बावड़ियों में कबूतरों का बसेरा होने पर उनकी बींट, पंख व उनके पानी में सड़ते शव पानी की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। कई बार कबूतरों के कारण पानी पीने लायक नहीं रहता। केवड़ी पानी की गुणवत्ता को बचाये रखने व उसे पीने लायक बनाये रखने में मदद करती हैं। किसी भी बावड़ी से थोडा सा दूर हट कर, बावड़ी की गहराई के समकक्ष एक कुआ बनाया जाता है। कुऐ के मुँह पर लोहे का जाल ढका जाता है ताकि कबूतरों व दूसरे प्राणियों को प्रवेश लेने से रोका जा सके। बावड़ी का पानी बावड़ी व केवड़ी के बीच की भूमि से छन–छन कर केवड़ी में जमा होता रहता है जिसका तल वहीं होता जितना बावड़ी के जल का होता है। केवड़ी के मुँह पर लगे जाल में पानी निकलने का द्वार होता है जिसको उपयोग के समय खोल लिया जता है तथा उपयोग बाद बंद कर दिया जाता है। जिला कोटा की कनवास तहसील की, सांगोद पंचायत समिति की खुराड़ पंचायत के बृजनगर गाँव में ''केवड़ी'' दर्शनीय है। यहाँ एक महल, बावड़ी तथा हनुमान मंदिर पास–पास हैं तथा मंदिर के पास केवड़ी विद्यमान है।

राजस्थान में दैनिक उपयोग के जल संग्रहण हेतु तालाब या जोहड़ गाँव में आस–पास बनाये जाते हैं। इनके तट (पाल) मिट्टी के बने होते हैं। कुछ बहु उपयोगी वृक्ष एवं कई धार्मिक स्थल भी पाल पर होते हैं। जोहड़ प्यालेनुमा एवं उथले जलाशय होते हैं जिनमें पानी का वाष्पीकरण अधिक होता है। पानी के वाष्पीकरण को रोकने हेतु कई बार जोहड़ के पैंदे में सँकरी कच्ची एक या अधिक कुई बनाई जाती हैं जिनको ''नाड़ी'' कहते हैं जिनमें वाष्पोत्सर्जन अपेक्षाकृत कम होता है। तालाबों में पानी के बीच में मिट्टीं का टीला सा बनाकर एक या अधिक द्वीप बनाये जाते हैं जिन्हें ''लाखेटिया'' कहते हैं। लाखेटिया पर पक्षी व दूसरे जीव विश्राम करते हैं व दूसरी जैविक क्रियाओं का संपादन करते हैं। अलवर जिले व हरियाणा के पड़ोसी महेन्द्रगढ व रेवाडी जिलों में ''कदमा तालाब'' भी होते हैं। ये ऐसे तालाब हैं जिनकी पाल पर एक या अनेक कदम अर्थात् कदम (Mitragyna parvilolia) के वृक्ष हों, कदमा तालाब कहलाते हैं। ये वृक्ष पाल पर रोपित किये जाते हैं। गाँव की महिलाऐं कई धार्मिक कार्यक्रम तालाब के कदम वृक्ष/वृक्षों के नीचे संपन्न करती हैं।

6. **निष्कर्ष**– राजस्थान के आदिवासियों, वनवासियों एवं ग्राम्य समुदायों की लोक भूगोल की जानकारी बहुत श्रेष्ठ है। वन एवं वनस्पति, जल स्त्रोतों व प्रवाह तंत्र, वर्षा, पर्वत एवं चट्टानें, कुए एवं अन्य मानव निर्मित जल स्रोतों के छोटे – बडे विशिष्ट विभेदों को स्पष्टता एवं सटीकता से समझाने हेतु पृथक–पृथक शब्दावली उपलब्ध है। यह लोक ज्ञान की बारीकी, वैज्ञानिकता गहनता व विशालता को प्रकट करता है। लोक–ज्ञान का यह खजाना गत सदियों की लम्बी अवधि में मानव समाज द्वारा सृजित, संग्रहीत व सुरक्षित किया है। आधुनिकता के युग में परंपरागत ज्ञान को भी बचाये रखने की आवश्यकता हैं ताकि जन कल्याण एवं विकास में उसका उपयोग हो सके।

7. **आभार**– लेखक अध्ययन में सहयोग देने हेतु वन विभाग, राजस्थान का बहुत आभारी है।

References

1. Joshi, P. (1995) Ethnobotany of the primitive tribes in Rajasthan. Print well and Rupa books Pvt. Ltd. Jaipur. pp. 1-254 + plates.
2. Sharma, S.K. (1998) Ethno-zoology (Hindi). Himanshu Publications, Udaipur & New Delhi. pp. 1-147.
3. Sharma, S.K. (2007) study of Biodiversity and Ethnobiology of Phulwari Wildlife Sanctuary, Udaipur (Rajasthan). Ph.D. Thesis. Deptt. of Botany, MLSU University, Udaipur. pp. 1-660.
4. Sharma, S.K. (2020) Forest Development and Ecology (Hindi).Himanshu Publications, Udaipur & New Delhi. pp. 1-570.
5. Sharma, S.K. (2021): Wild Animal Rescue and rehabilitation. Himanshu Publications, Udaipur & New Delhi. pp. 1-237.
6. Sharma, S.K. (2025): Fire management in Forest Areas (Hindi). Himanshu Publications, Udaipur & New Delhi. pp. 1-237.
7. Pandey, D.N. (1998) Ethnoforestry - local knowledge for sustainable forestry and livelihood security. Himanshu Publications, Udaipur & New Delhi. pp. 1-91.